21

अंक २१

संस्कृत-पाठ-माला ।

[संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

भाग इक्कीसवाँ ।

लेखक और प्रकाशक ।
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

प्रथम वार

संवत् १९८४, शक १८४९, सन १९२७

मूल्य पांच आने ।

निरुक्ति ।



वेदमंत्रों का मनन करनेके समय वैदिक शब्दों की निरुक्ति जाननेकी आवश्यकता होती है। यह निरुक्तिका विषय अब इस के आगे बताना है। यदि पाठक इन स्थानों में दिये हुए नियम और उदाहरण मननपूर्वक पढेंगे तो उनको वैदिक शब्दोंकी निरुक्तिका उत्तम ज्ञान हो सकता है। इसलिये आशा है कि पाठक इस सुगम पाठविधि से लाभ उठावेंगे।

स्वाध्यायमंडल
औंध (जि. सातारा)
९ । १२ । १७

निवेदक.
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)



संस्कृत-पाठ-माला।

भाग इक्कीसवाँ।

—o—

पाठ १

शब्दोंकी निरुक्ति।

वैदिक पदोंकी निरुक्ति करनेके लिये वह पद किस धातुसे बना है यह जाननेकी आवश्यकता है। धातुके अक्षरोंकी समानता पदमें देखनेसे प्रायः पता लग सकता है कि यह शब्द इस धातुसे बना है। जैसा- " गौ " शब्द लीजिये। इस में " ग " अक्षर है और वह " गम् " धातुमें है, इसलिये अनुमान हो सकता है कि यह पद गम् धातुसे हुआ है। दूसरा गति अर्थ वाला " गा " धातुभी इसमें हो सकता है।

इसलिये " गच्छति इति गौः " ऐसा गो पदका निर्वचन करते हैं। " जो गतिमान है " यह इसका अर्थ है, इस पदके अर्थ- गाय, वाणी, भूमि, सूर्य किरणें, सूर्य, चन्द्र, इंद्रियां आदि अनेक वेदमें आते हैं, सबमें भिन्न भिन्न प्रकारकी गति होती ही है। उदाहरण देखिये-

आयं गौः पृश्निरक्रमीत्। ऋग्वेद. १०।१८८।१

" (आयं) यह (गौः) भूमि (पृश्निः) अंतरिक्ष में (अक्रमीत्) जाती है। " इस मंत्रमें गौ शब्द पृथ्वीवाचक है और वह पृथ्वीकी गतिका सूचक है। तथा-

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ
इह पोषयिष्णुः ॥ ऋग्वेद ३ । १४ । ६

" हे (गावः) गौवो ! (मया गोपतिना) मुझ गोपालके साथ (सचध्वं) मिलकर रहो, (इह अयं) यहां यह (पोषयिष्णुः) पालन करनेवाली (वः गोष्ठः) तुम्हारी गोशाला है । " यहां गौ शब्द (अर्थात् गावः शब्द) गाय का वाचक है, परंतु अलंकार से इन्द्रिय वाचक भी होना संभव है ।

इस प्रकार अन्यान्य अर्थोंके उदाहरण वेदमें अनेक मिल सकते हैं।

वेदमें कईवार " अंशके लिये पूर्णका प्रयोग " किया जाता है। अर्थात् " गौ " शब्दका प्रयोग गौसे उत्पन्न होनेवाले किसी भी पदार्थ के लिये होता है । यह विषय बडा गहन है तथापि संक्षेप से यहां देखिए-

"गौ" शब्द "गायके दूध" के लिये निम्नलिखित मंत्र में है, देखिये-

गोभिः श्रीणीत मत्सरं ॥ ऋ. ९ । ४६ । ४

" (गोभिः) गायके दूध के साथ (श्रीणीत) पकाओ (मत्सरं) सोमरसको ।" अर्थात् गायका दूध लेकर उसमें सोम रस डालो और दोनोंको साथ साथ पकाओ ।

इसी मंत्रमें " मत्सर " शब्द सोम रस का वाचक है, मत्सर का दूसरा अर्थ लोभ है, वह यहां अभीष्ट नहीं है । मत्सर शब्द "मद्" (हर्षित होना) इस धातुसे बनता है ।

उक्त प्रकार " गौ " शब्द, " गायका दूध, दही, मक्खन, घी, चर्म, चर्मसे बनी रस्सियां " आदिके लिये प्रयुक्त होता है, क्यों कि ये सब पदार्थ गौ से बनते हैं। देखिये इस के उदाहरण-

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि । ऋग्वेद. १० । ९४ । ९

" (अंशुं) सोमका (दुहन्तः) रस निचोडनेवाले (गवि) चर्मपर (अध्यासते) बैठते हैं । " यहां " गो " शब्द का अर्थ

गो चर्म अथवा चर्म है। तथा और देखिये –

गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्व। ऋग्वेद. ६।४७।२६

" (गोभिः) गोचर्म की रसियों से (सन्नद्धः) बंधा हुआ तू रथ है इससे (वीळयस्व) तू दृढ बनो" यहां गो शब्दका अर्थ चर्म से बनी हुई रसी है।

इसी प्रकार गो शब्दके अनेक अर्थ वेदमें होते हैं गायसे जितने भी पदार्थ बनते हैं उन सबका वाचक एक गौ शब्द है। धनुष्य की डोरी चर्मकी तांत से बनती है, इसलिये उसका नाम भी गौ है। इस प्रकार अनुसंधानसे जानना चाहिये।

दो धातुसे बने शब्द।

कई शब्द एक धातु से बनते हैं, उसी प्रकार कई शब्द दो अथवा अधिक धातुओंसे भी बनते हैं अथवा वैसे सिद्ध किये जा सकते हैं देखिए- " हिरण्य " शब्द है, इसमें दो भागों की कल्पना हो सकती है। " हिर्+रण्य" इसमें " रण्य " पद " रमणीय " पदका संक्षिप्त रूप होगा, देखिये—

रमणीय, रम्णीय, रम्ण्य, रण्य, इस ढंगसे यह " रण्य " पद रमणीय पद का संक्षिप्त रूप स्पष्ट प्रतीत होता है, इस लिये यह "रम्" धातुसे सिद्ध हुआ मानना योग्य है।

" हि " अथवा " हिर् " पद " हृ " धातुसे होना संभवनीय है। हृदय शब्द का भाषामें "हिर्दय" भी कई लोग कहते हैं उसमें से " दय " हटाया जाय तो " हिर् " शेष रह जाता है। यह " हिर् - रण्य = हिरण्य " शब्द इस प्रकार बना है। हृदय के लिये जो रमणीय लगता है वह हिरण्य है यह धन का नाम है। धन, दौलत, संपत्ति आदि हरएक मनुष्यके हृदयको रमणीय लगती है, इसलिये धनका यह नाम है।

"हृ" धातुका अर्थ हरण करना भी है, एक स्थानसे हरण करके जो दूसरे स्थानपर लिया जा सकता है वह हिरण्य होता है। धन एकके पाससे दूसरेके पास जाता रहता है इस लिये धन को हिरण्य कहते हैं, इसका उदाहरण देखिये.-

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये ॥ ऋ. १।२२।५

"(हिरण्य-पाणिं) सुवर्ण के समान चमकदार हाथोंसे अर्थात् किरणोंसे युक्त (सवितारं) सूर्य की अपनी (ऊतये) रक्षा होने के लिये (उपह्वये) प्रार्थना करते हैं।" यहां हिरण्य शब्द धन रूपी सुवर्ण के समान चमकदार इस अर्थमें प्रयुक्त है। इस प्रकार पाठक शब्दोंकी व्युत्पत्ति जानें.।

पाठ २

इस पाठ में निम्न लिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये-

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ वा. यजु. ३६।९

(मित्रः) सब का मित्र ईश्वर (नः शं) हम सबको कल्याणकारी होवे। (वरुणः) सबसे श्रेष्ठ ईश्वर (शं) कल्याण कारी होवे। (अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर (नः शं) हम सबको कल्याणकारी होवे। (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः शं) हम सबका कल्याण कारी होवे।। (बृहस्पतिः) बडी वाणीका स्वामी ईश्वर (शं) हमारा कल्याणकर्ता होवे और (उरुक्रमः विष्णुः) महा-पराक्रमी व्यापक ईश्वर (नः शं) हमारा कल्याणकर्ता होवे।

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥वा.यजु. ३६।१०

(वातः) वायु (नः शं) हम सबके लिये कल्याण कारी होकर (पवतां) बहता रहे। (सूर्यः) सूर्य (नः) हम सबके

लिये (शं तपतु) कल्याण कारक होकर तपता रहे। (कनिक्रदद) गर्जना करनेवाला (पर्जन्यः देवः) मेघराज देव (नः) हम सब के लिये (शं अभिवर्षतु) कल्याण करने वाली वृष्टि का वर्षाव करे।

अहानि शं भवन्तु नः शँ रात्रीः प्रति धीयताम्।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः॥
वा. यजु. ३६। ११

(नः) हम सबके लिये ((अहानि शं भवन्तु) दिन कल्याण कारक हो। (रात्रीः शं प्रतिधीयतां) रात्री का समय हम सबके लिये कल्याण को धारण करे। (अवोभिः) सब प्रकारके रक्षणों के साथ (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य वान् और तेजस्वी (नः शं भवतां) हम सबके लिये कल्याण कारक हों। (रातहव्यौ) अन्न देनेवाले (इन्द्रावरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ (नः शं) हम सबका कल्याण करें। (इंद्रापूषणौ) ऐश्वर्य वान् और पोषणकर्ता (वाजसातौ) अन्नके दानके समय (नः शं) हम सबका कल्याणकारी हों। (इन्द्रासोमौ) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् (सुविताय) उत्तम गति के लिये और (शं योः) शांतिसुख और दुःख प्रतिकारके लिये सहायक बनें। अर्थात् हरएक समय और हरएक शक्ति हम सब के लिये लाभदायक बने।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतिभिः॥ ऋ. ४।३१।३

हे ईश्वर! तू (नः) हम सबका, (सखीनां) सब मित्रजनों का और (जरितॄणां) सब उपासकोंका (शतं ऊतिभिः) सैकडों रक्षणोंके द्वारा (अभि सु अविता) सब प्रकार से उत्तम रक्षक (भवसि) होता है।

हम सबका, मित्रों और उपासकों का तू सैकडों प्रकारों से अत्यंत उत्तम रक्षण करता है। प्रभो! तुम्हारे जैसा दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है। तेरे रक्षाके साधन अनंत हैं और रक्षाके मार्ग भी अनंत हैं।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिंदाः॥ ऋ० ५।२४।१

हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर! (नः त्वं अन्तमः) हमारे लिये तूही समीप हो। इसलिये तू हमारा (त्राता) रक्षक (शिवः) कल्याणकर्ता और (वरूथ्यः) श्रेष्ठ हो। तू (अग्निः) तेजस्वी (वसुः) सबका निवासक (वसुश्रवाः) निवास करनेके योग्य अन्नादि देनेवाला (अच्छा नक्षि) हमें उत्तम प्रकार प्राप्त हो। और हमें (द्युमत्तमं) उत्तम तेजस्वी (रयिं दाः) धन दो।

परमेश्वर ही हम सबको अत्यंत समीप है। उससे अधिक समीप और कोई नहीं है, वही सबका रक्षक, कल्याण करनेवाला और सबको श्रेष्ठ प्राप्तव्य है। वही सबकी सुरक्षा करता है और सबका पोषण करता है। वह हम सबको प्राप्त हो और हमें उत्तम धन देवे।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वा राय उभयासो जनानाम्॥
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्।
ऋ. ६।१।५

हे ईश्वर! (क्षितयः) पृथ्वीपर रहने वाले मनुष्य (त्वां वर्धन्ति) तुझे बढाते हैं, तेरी महिमा फैलाते हैं। (जनानां) मनुष्योंके (उभयासः रायः) दोनों प्रकारके धन भी तेरी महिमा प्रकाशित करते हैं। तुमही (त्राता) सबका तारक हो और (तरणे चेत्यः) दुःखसे तैर जानेके लिये (भूः) योग्य हो तथा तुमही (मनुष्याणां) मनुष्योंका पिता माता आदि (सदं इत्) सदाही तुम ही हो।

हे ईश्वर ! सब ज्ञानी जन तेरी महिमा फैला रहे हैं, सब लोगों को स्थूल सूक्ष्म धन तूही देता है, सबको दुःखसे पार होने के लिये तेरा ही ज्ञान प्राप्त करने योग्य है क्यों कि तूही सब मनुष्यका भाई, माता, पिता आदि संबंधी हो।

तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ॥
समुद्रं न सिंधव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति।

ऋ. ६। ३६। ३

(तं इन्द्रं) उस प्रभुके पास (ऊतयः सध्रीचीः) रक्षक शक्तियां रहती हैं तथा (वृष्ण्यानि पौंस्यानि) उत्साहवर्धक शक्तियां (नियुतः) साथ साथ नियुक्त होकर (सश्चुः) सेवा करती हैं। (सिंधवः समुद्रं न) नदियां जिस रीतिसे समुद्रको प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार (उक्थशुष्मा गिरः) बलसे युक्त स्तुतिप्रार्थना-वाली वाणी (उरूव्यचसं) सर्वव्यापक ईश्वर के पास (आ विशन्ति) पहुंचती हैं।

परमात्माके पास सब प्रकारका संरक्षक सामर्थ्य है, अनंत बल भी वहां ही है। हरएक मनुष्य अपनी वाणीसे उसीकी प्रार्थना करता है अथवा हरएक मनुष्यको उसी की प्रार्थना करना चाहिये। किसीभी भाषाद्वारा और कहां भी रहकर की हुई प्रार्थना पूर्ण रीतिसे उसीके पास पहुंचती है।

सूचना।

इस पाठमें आये हुए देवताओंके अनेक नाम एकही ईश्वरके वाचक होते हैं। उस देवताका बोध करते हुए एक अद्वितीय परमेश्वरके वाचक होते हैं क्यों कि " एक ही सद्वस्तु का वर्णन ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे करते हैं " यह वेदके मंत्रद्वारा ही स्पष्ट किया गया है।

पाठ ३

शब्दोंकी निरुक्ति।

" समुद्र " शब्दमें " सं+उत्+द्र " ये तीन विभाग हैं इनका अर्थ-(सं) मिलकर (उत्) ऊपर (द्रु) गति करना है। जल के अणु परस्पर मिलकर एकरूप होकर ऊपर उठने के लिये गति करते हैं। जिन लोगोंने समुद्र देखा होगा उनको समुद्रकी इस गतिका ज्ञान हो सकता है। समुद्र का जल स्थिर नहीं होता परंतु लहरोंके द्वारा सदा हिलता रहता है यही अर्थ इस शब्दमें है। यहां सं उत् ये दो उपसर्ग हैं और द्रु धातु है जिसका अर्थ गति है॥

इसीकी दूसरी व्युत्पत्ति " सं+मुद्+रं " है, इसमें (सं) एक होकर (मुद) आनंद (र) देता है। समुद्रमें जल के अणु आपस में मिलकर देखने वाले को आनंद देते हैं। यहां समुद्र शब्द सं उपसर्गपूर्वक " मुद् " (आनंदित होना) धातुसे बना है।

इसकी तीसरी व्युत्पत्ति " सं + उन्द " (भिगोना) इस धातुसे की जाती है इसका अर्थ (सं) उत्तम रीतिसे (उनत्ति) जो भिगोता है। समुद्र सबको भिगो सकता है या भिगोता है क्योंकि उसमें अपरंपार जल होनेसे भिगोनेका कार्यकरनेमें वह समर्थ है। उदाहरण—

समुद्रमव जग्मुरापः॥ ऋ. १। ३२। २

" (आपः) जल (समुद्रं) जलनिधिके प्रति (अव जग्मुः) पहुंचे। "

(२)

आदित्य शब्द " आ + दा " (लेना, स्वीकार करना) इस धातुसे बनता है " आदत्ते इति आदित्यः " (जो लेता है वह

आदित्य है। आदान अर्थात् स्वीकार करनेका धर्म इसमें होता है। इसके विविध अर्थ देखिये –

१ आदत्ते रसान्=जलों अथवा रसोंका आदान करता है अर्थात् शोषण करता है। सूर्य जलादि रस का आकर्षण करता है।

२ आदत्ते भासं=तेज का आदान करता है, किसी भी दूसरे तेजस्वी पदार्थका तेज खींचता है, इसलिये उसकी प्रभा कम हो जाती है। इसका उदाहरण देखिये-

अथावयमादित्य व्रते तवानागसो
अदितये स्याम ॥ ऋग्वेद १।२४।१५

"हे (आदित्य) सूर्य! (अथ) अब (वयं) हम सब (तव व्रते) तेरे व्रतमें रह कर (अन् + आगसः) निष्पाप होते हुए (अ-दितये) अखंडित मुक्तिके लिये योग्य (स्याम) होंगे।"

(३)

"वृत्र" शब्द "वृ" धातुसे बनता है, आवरण करता है, घेरता है, चारों ओर से घेर लेता है. उसका नाम वृत्र है। प्रायः वेदमें यह शब्द मेघ वाचक है क्यों कि वह आकाश में आकर घेरता है, तथापि चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु, दुष्ट विकार आदि अनेक अर्थमें आता है, इसका उदाहरण यह है–

अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं
जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ऋ० १।३२।११

"(यत्) जो (अपां बिलं) जल के निकलनेका द्वार (अपिहितं) ढका हुआ था उसको खोलने के लिये (वृत्रं जघन्वान्) मेघको मार कर (तत् अपववार) उसे खोल दिया।" यहां मेघको मार कर जल के प्रवाह मुक्त करनेका वर्णन है। अर्थात्

जब मेघ टूटा तब उसमें जो जल बंद था वह वृष्टिरूपसे प्रवाहित हुआ ।

यहां अलंकार से घेरनेवाले शत्रुका वध करके शत्रुके वधसे उसके रक्तको नदियां बहाने का भी वर्णन है। परंतु यह अर्थ गुप्त है।

(४)

" रात्री " शब्द " रा " (दान करना) धातु से बनता है। यह सुख अथवा विश्राम का दान करती है, सब प्राणि मात्र इस रात्री में विश्राम प्राप्त करते हैं। " रम् " धातु से भी यह शब्द बनता है। " रमयति भूतानि " (प्राणियोंको रममाण करती है) वह रात्री है । इसका उदाहरण –

ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं
ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ ऋग्वेद १।३५।१

(जगतः) जंगम जगत् के (निवेशनीं) निवेशक (रात्रीं) रात्रीकी (ह्वयामि) स्तुति करता हूं और (ऊतये) रक्षाके लिये (देवं सवितारं) सूर्य देवकी (ह्वयामि) स्तुति करता हूं। " यहां रात्री शब्दका प्रयोग है और वह जगत् को विश्राम देनेवाली के अर्थ में है । जगत् शब्द का यहां अर्थ चलनेवाले प्राणी है।

(५)

" अश्व " शब्द घोडे का वाचक है। यह " अश् " (भक्षण करना, खाना) इस अर्थ में धातु है। यह मार्गको खाता है (अध्वानं अश्नुते) इसलिये इसको अश्व कहते हैं । अथवा (अशनः) बडा खानेवाला होता है, बहुत खाकर हाजम करने वाला घोडा ही होता है।

मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । ऋ० १।१६२।४

" (मानुषाः) मनुष्य (अश्वं) घोडेको (परि नयन्ति) चारों ओर ले जाते हैं ।" अर्थात् घुमाते हैं । यहां अश्वपर चढकर चारों ओर घूमनेका वर्णन है ।

(६)

" मनुष्य " शब्द " मनन करके वसते हैं" अर्थात् मनन करके अपने कर्म करते हैं, इस प्रकार यह " मन् " धातुसे शब्द बनता है । अन्य प्राणी ऐसे मननशील नहीं होते जैसे मानव प्राणी होते हैं । " मनु " से बने हुए इस अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त हो सकता है ।

(७)

" संग्राम " शब्द युद्धवाचक है, (सं) एक होकर (ग्राम) मेल होना इस अर्थ का यह शब्द है अथवा (सं गतौ ग्रामौ) अर्थात् दो ग्राम के लोग परस्पर एक दूसरे के साथ भिड जाते हैं, लड पडते हैं उसका नाम संग्राम है। संग्राम यद्यपि युद्धवाचक है तथापि उसकी व्युत्पत्तिसे ऐसा प्रतीत होता है कि दो ग्रामों के लोग आपस में झगडते हैं यह भाव इसमें स्पष्ट है ।

(८)

" वज्र " शब्द शस्त्र, तलवार. खड्ग आदि अर्थ में है। वर्जन अर्थ के वर्ज् धातुसे यह बनता है । (वर्जयति इति वज्रः) जो शत्रुका वर्जन करता है, जो शत्रुको दूर भगाता है उसका नाम वज्र है । हाथ में शस्त्र रहा तो शत्रुको दूर रखा जा सकता है।

(९)

" आत्मा " शब्द " अत् " (सतत गमन करना) इस धातुसे बना है । इसमें सतत गति रहती है, चेतना हल चल करनेकी शक्ति इसीमें होती है, जड शरीरको यही हिलाता है, चलानेकी

शक्ति इसमें रहती है इसी लिये इसको आत्मा कहते हैं। इससे आत्मा का अर्थ " संचालक " होता है।

(१०)

वेदमें शब्द बननेके समय धातुके अक्षरोंमें उलट पुलट भी हो जाता है जैसे – " हिंस् " (हिंसा करना) इस धातु से " सिंह " शब्द बनता है जिसका अर्थ " हिंसक प्राणी " है। " हिंस् " इस धातुके व्यंजन के स्थान बदले हैं और " सिंह " शब्द बना है।

भाषामें भी चाकू के लिये " काचू " बिलकुल के लिये "कुल-बिल " आदि अनेक शब्द इसी प्रकार आदि और अंतका स्थान विपर्यय होकर बने हैं। इसी प्रकार संस्कृत शब्दों के बननेमें भी होता है। इस प्रकार अनुसंधान करनेसे कई शब्दोंमें में इसी प्रकार का साधर्म्य दिखाई देगा।

—

पाठ ४

इस पाठमें निम्न लिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये—

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः।
नाऽस्य क्षीयन्त ऊतयः॥ ऋ. ६। ४५। ३

(अस्य) इसके (महीः प्रणीतयः) पहुंचनेके मार्ग बडे हैं। इसकी (प्रशस्तयः) प्रशंसाएं (पूर्वीः) अपूर्व हैं। तथा इसकी (उतयः) रक्षा शक्तियां (न क्षीयन्ते) कभी क्षीण नहीं होती।

इस प्रभुके बताये मार्ग अनन्त हैं जो निःसंदेह उन्नति को पहुंचा देते हैं। इसकी रक्षक शक्तियां भी अनंत हैं इसी लिये अनेक लोग अनेक प्रकारसे इसकी प्रशंसाएं करते हैं।

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥ ऋ. ५ । ७ । ६

(मर्त्यः) मर्त्य मनुष्य (यं) जिस ईश्वर को (पुरुस्पृहं) अत्यंत प्रशंसनीय (विश्वस्य धायसे) सब विश्वका धारण करनेवाला (पितूनां प्रस्वादनं) अन्नोंको मीठा बनानेवाला तथा (आयवे) मनुष्य मात्रके लिये (अस्ततातिं) गृहके समान आश्रय रूप (विदत्) जानता है ।

मनुष्य उस ईश्वर को उपास्य, जगत् का धारक, अन्न को रुची अर्थात् उत्तम स्वाद देनेवाला और मनुष्योंका एक मात्र आश्रय जानकर उसकी उत्तम उपासना करे और उस ईश्वरको अपने अंदर ऐसा ही अनुभव करे अथवा मनन से उसके उक्त गुण जाननेका यत्न करे ।

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विंद्र ऊती ॥
ऋ. १ । १०० । १२

(सः) वह (मरुत्वान् इन्द्रः) प्राणशक्तिसे युक्त प्रभु (वज्रभृत्) शस्त्र धारी, (दस्युहा) शत्रुका नाश करनेवाला, (भीमः) भयंकर उग्र, (सहस्रचेताः) सहस्रों प्रकारके ज्ञानोंसे युक्त, (शतनीथः) बहुत प्रकारसे जगत् को चलानेवाला, (ऋभ्वा) प्रकाशमान (चम्रीषः न) रसयुक्तके समान सर्वत्र एक रस, (शवसा) बलसे (पांचजन्यः) पंचजनोंका हितकर्ता प्रभु (नः ऊती भवतु) हम सबका रक्षक होवे ।

उक्त प्रकार विविध शक्तियोंसे युक्त प्रभुकी रक्षामें रहनेसे ही सब सुरक्षित रह सकते हैं ।

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥
ऋ. ६ । ३६ । १

हे ईश्वर ! (तव मदासः) तेरे आनंद (सत्रा विश्वजन्याः) सच मुच सब जनोंके हितकारी हैं, (अध) और (ये पार्थिवासः रायः) जो पृथ्वीपर के धन हैं, वेभी सबको लाभ कारी हैं । तू (वाजानां विभक्ता) तू धनोंका विभाजक (सत्रा अभवः) सच-मुच हुआ है और तू ही (देवेषु असुर्यं) प्राणोंका बल (धारयथाः) धारण करता है ।

परमेश्वरके जो आत्मिक और अलौकिक आनंद हैं वे सचमुच सब लोगोंके हितकारी हैं । यही ईश्वर सबको यथा योग्य रीतिसे धनोंका विभाग करता है और वही सूर्यादि देवताओं में उत्तम बल स्थापन करता है ।

कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ॥ ऋ० १ । १२ । ७

(अध्वरे) यज्ञ में सत्कर्म करनेके समय (अमीव-चातनं) रोग दूर करने वाले (सत्य-धर्माणं) सत्य नियम पालन करने वाले, (कविं) कवि (अग्निं देवं) तेजस्वी परमात्मदेव की ही (स्तुहि) प्रशंसा कर ।

परमात्म देव आरोग्य दाता, सत्य नियमोंका पालक, कवि अर्थात् शब्दका प्रवर्तक और अत्यंत तेजस्वी है, इसीलिये वह स्तुति करने योग्य है । उसकी स्तुति करनेसे उपासक के अंदर तेजस्विता बढती है ।

समानं नीळं वृषणो वसानाः सञ्जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पांति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥
ऋ. १० । ५ । २

(वृषणः) बलवान् (महिषाः) बडी इच्छा धारण करनेवाले, (अर्वतीभिः वसानाः) चालक शक्ति के साथ रहनेवाले सज्जन (समानं नीलं) समान एक आश्रयस्थान को (संजग्मिरे) एक होकर पहुंचते हैं। (कवयः) ज्ञानी लोग (ऋतस्य पदं) सत्यके स्थानका (नि पान्ति) संरक्षण करते हैं और (गुहा) बुद्धिमें (पराणि नामानि) श्रेष्ठ नामोंको (दधिरे) धारण करते हैं।

श्रेष्ठ मनुष्य अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के साथ उस एक ईश्वर के आश्रय स्थानको प्राप्त होते हैं। ज्ञानी लोग सदा सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करते हैं। इसलिये हरएक को बुद्धिमें सदा श्रेष्ठ विचार धारण करके अपने आपको श्रेष्ठ बनाना चाहिये।

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते।
अधीवासं सोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम्॥
ऋ. १०।५।४

(ऋतस्य) सत्यके (प्र-दिवः वर्तनयः) अत्यंत तेजस्वी सनातन मार्ग (इषः वाजाय) मनकी इच्छा और अन्न के लिये (सचन्ते) सहाय्य करते हैं। (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी (सुजातं) उत्तम प्रसिद्ध (अधिवासं) सर्व व्यापक को (वावसाने) वसाते हैं। (घृतैः) घी और (मधूनां अन्नैः) माधुर्ययुक्त अन्नों के द्वारा (वावृधाते) सब को पुष्ट करते हैं।

सनातन सत्य धर्म मार्ग का आक्रमण करनेसे सब मनुष्यों के मनोगत पूर्ण होते हैं, और इसी ढंगसे सब लोग बलवान भी बन सकते हैं। क्यों कि प्रसिद्ध ईश्वर सर्व व्यापक है और वह सब को घी अन्न आदि द्वारा पुष्ट बनाता है, इसलिये उसकी उपासना से सब को बल प्राप्त होता है।

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥
ऋ. १० । ५ । ७

(दक्षस्य जन्मन्) बलकी उत्पत्तिके समय (अ-दितेः) अविनाशी मूल प्रकृतिके (उपस्थे) समीपके स्थानपर (परमे व्योमन्) अत्यंत विस्तृत आकाशमें (सत् च) तीनों कालोंमें एक जैसा रहने वाला अविकारी आत्मतत्त्व और (अ-सत् च) उस आत्मासे भिन्न पदार्थ ऐसे दो पदार्थ थे । इस (पूर्व आयुनि) पूर्व अवस्थामें (ह नः) निश्चयसे हम सबके अंदर (ऋतस्य प्रथमजाः) सत्य धर्मका पहिला प्रवर्तक (अग्निः) तेजस्वी ईश्वर प्रकाशित हुआ जिसके साथ (वृषभः) बलवान आत्मा और (धेनुः) कामधेनु अर्थात् बुद्धि थी ।

प्रकृति और ईश्वर अनादिकालसे हैं । ईश्वर प्रकृतिमें बलका संचार करता है । वही सत्य धर्मका पहिला प्रवर्तक है। बल और पोषण शक्ति, बलवान आत्मा और सुबुद्धि, ये सब परमेश्वरके साथ रहते हैं । अर्थात् परमेश्वरसे सबको बल प्राप्त होता है । और परमात्मा से उत्तम बल प्राप्त होकर ही सब अपना कार्य योग्य रीतिसे करनेमें सफलता और सुफलता प्राप्त करते हैं ।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्तेनौदनेनानि तराणि मृत्युम्॥
अथर्व० ४ । ३५ । १

(ऋतस्य प्रथमजाः) सत्यके पहिले प्रवर्तक (प्रजापतिः) प्रजापति परमेश्वरने (तपसा) अपने तेज के द्वारा (यं ओदनं) जिस सृष्टिरूपी चावल को (ब्रह्मणे अपचत्) ज्ञान के लिये अथवा ब्रह्मके लिये पकाया और (यः) जो (लोकानां विधृतिः) लोकों का विशेष धारण कर्ता और जो सबका (नाभिः) मध्य में विराज-

मान है, उसके (तेन ओदनेन) पकाये उस सृष्टिरूपी चावलोंसे हम (मृत्युं अतितराणि) मृत्युके पार होते हैं।

परमेश्वरने इस विश्व की हंडीमें सृष्टि रूपी अन्नका पाक किया है, इसके बननेके लिये उसने अपनी ही उष्णता लगाई और अपने तेजसे यह अन्न उसने सिद्ध किया है। वह ईश्वर लोकोंका धारक और सब सृष्टिके मध्यमें वर्तमान है। उसका यह अन्न सेवन करता हुआ और उससे बल प्राप्त करता हुआ मैं मृत्युके परे जाऊंगा।

सूचना— पाठक इस प्रकार मंत्रोंका अभ्यास और अर्थ का मनन करें।

पाठ ५

शब्दानुकरण से भी कई शब्द बनते हैं जैसे- कौवा "काँ काँ" शब्द करता है इसलिये उस कौवेका नाम संस्कृतमें " काक " हुआ है। यह केवळ उस कौवेके शब्दका अनुकरण ही है। इसी प्रकार ट्टिटिभ पक्षी " टिट् टिट् " ऐसा शब्द करता है इस लिये उसका यह नाम हुआ है।

औपमन्यव नामक वैय्याकरणाचार्य का मत है कि ये शब्द भी इस प्रकार केवल शब्दानुकरणसे नहीं बने हैं परंतु इनका भी यौगिक अर्थ है। परंतु कई अन्य आचार्य ऐसे शब्दों को केवल शब्दानुकरण ही मानते हैं। इस विषयमें प्रायः सर्वसंमत निरुक्ति के नियम ये हैं-

(१) जिन पदोंमें स्वर धातु प्रत्यय आदि स्पष्ट प्रतीत होते हों उनकी निरुक्ति व्याकरणोक्त रीतिसे ही करनी योग्य है। जैसा- दिव् धातु + अ प्रत्यय=" देव " शब्द सिद्ध हुआ। यह स्पष्ट व्युत्पत्ति है।

❀

(२) जहां पूर्वोक्त प्रकार व्याकरण की स्पष्ट रीति से शब्द की व्युत्पत्ति नहीं दिखाई देती है वहां अर्थ की प्रधानता मानकर अर्थके अनुसार धातु आदिकी कल्पना करके पदकी निरुक्ति तथा अर्थ करना चाहिये। जैसा " नि गम् " धातुसे " निघण्टु " शब्द बनाना है, यहां स्पष्ट धातु नहीं है।

(३) जहां अर्थ की भी समानता नहीं है और धातु भी स्पष्ट नहीं दिखाई देता है वहां वर्ण की समानतासे योग्य धातुकी कल्पना करके अर्थ करना चाहिये- जैसा " गम् " धातुसे "गौ" शब्द बनाया। यहां केवल " ग " अक्षर की ही समानता है, न इस में गम् धातु स्पष्ट है और न अन्य कोई धातु।

अक्षर और वर्ण की समानतासे जो निर्वचन करने का ढंग है उस विषय में निम्न लिखित नियम ध्यान में रखने योग्य हैं।

१ धातु के आदि अक्षर का अवशेष-जैसा " प्र+दा " धातु से " त " प्रत्यय होकर " प्रत्त " रूप होता है। इसमें दा धातुके आदि अक्षर द का अवशेष " द्+त=त्त " हुआ है। वास्तविक 'प्रदात' रूप होना चाहिये था परंतु वैसा नहीं होता। यह उदाहरण इस नियम का है।

२ आदि अक्षर का लोप- जैसे धातु " अस् " है उसके प्रथम अक्षरका लोप होकर " स्तः, सन्ति " आदि रूप बनते हैं।

३ कई पदोंमें धातुके अंत्य अक्षरका लोप होता है- जैसे 'गम्' धातुसे त्वा प्रत्यय लगकर " गत्वा " रूप होता है।

४ कई उपान्त्य या मध्याक्षर का लोप होता है जैसे-गम् धातु से "जगमतुः" रूप होना चाहिये था, परंतु वैसा न होकर "जग्मतुः" होता है, यहां "गम्" धातुके मध्यम अ वर्णका लोप होता है जिस

से गम् का ग्म् बना और जग्मतुः, जग्मुः आदि गम् धातुके रूप बने हैं।

५ कई पदों में उपान्त्य अक्षर की वृद्धि होती है। जैसे-"राजन्" शब्द का रूप "राजा" होता है, "दण्डिन्" शब्द का दण्डी रूप होता है। यहां अन्त्य न् का लोप हुआ और उपान्त्य "अ अथवा ई" का दीर्घ हुआ।

६ कहीं किसी अक्षर का लोप हो जाता है। जैसे—"याच्" (याचना करना) इस धातुका वेद में रूप "यामि" होता है और "याचामि" नहीं होता। बीच के "चा" अक्षर का लोप हुआ। "तत्त्वा यामि" (ऋ० १।२४।११) इस मंत्रमें यामि शब्द "याचामि" शब्द के लिये आया है।

७ कई शब्दों में दो वर्णोंका भी लोप हो जाता है--जैसे "त्रि+ऋच्" इस से "तृच्" बनता है: यहां त्रिके र्+इ अर्थात् "रि" का लोप होकर केवल "त्+ऋच्" मिलकर तृच् हुआ है।

८ किसी शब्दमें आदि अक्षर का विपर्यय होता है जैसे-- 'द्युत्' धातु से "द्योतिष्" शब्द बनने के स्थानपर "ज्योतिष्" शब्द बनता है। हन् धातुसे "घन" शब्द बनता है। भिद् धातुसे 'बिन्दु' शब्द होता है।

९ किसी शब्दमें अक्षरोंके स्थानमें बदल हो जाता है अर्थात् आदि अक्षर अन्तमें और अंत अक्षर आदिमें हो जाता है जैसे-सृज् धातुसे "सर्जु" शब्द बनना चाहिये परंतु "रज्जु" बनता है। सर्जुका रस्जु बनकर रज्जु होता है। कस् धातुसे कसिता बननेके स्थानपर "सिकता" बनता है। कृत् धातुसे कर्तृ बनने के स्थानपर "तर्कु" बनता है।

१० किसी शब्दमें अन्त्य अक्षर का विपर्यय हो जाता है, जैसे-- मिह् धातुसे " मेघ, " वह् धातुसे "ओघ," गाह् धातुसे "गाध" शब्द बनते हैं, यहां धातु के अन्तिम हकारके स्थानपर अन्य अक्षर हुआ है । इसी प्रकार वह् धातु से "वध्" बनता है, मद् धातुसे मधु बनता है ।

११ कहीं नया अक्षर बीचमें घुस जाता है जैसे—अस्(क्षेपण) धातुसे " आस्थत् " बनता है। यहां बीचमें स्कार घुसा है। निवारण अर्थके वृ (वार) धातुसे द्वार बनता है इसमें दकार बीचमें घुसा है ।

ये नियम पाठक ध्यान में धारण करेंगे तो उनको शब्दोंकी सिद्धिके विषय में उत्तम ज्ञान हो सकता है। क्योंकि इन नियमोंके अनुसार ही प्रायः सब शब्दोंकी व्युत्पत्ति सिद्ध की जाती है । पाठक इन नियमोंका खूब मनन करें और वैदिक शब्दों में इन नियमों के कार्य का अनुभव करें । ये ऊपर साधारण नियम दिये हैं, परंतु और भी कुछ विशेष नियम हैं जिनमें धातुका रूप ही बदल जाता है ऐसे नियम देखिये –

१२ संप्रसारण होता है । धातुके य र ल व इन अक्षरोंके स्थान पर इ ऋ ऌ उ होते हैं; इसका नाम संप्रसारण है-जैसे " यज् " धातुसे " इष्टि " शब्द होता है तथा " इष्टवान्, इष्ट्वा, इष्ट" आदि शब्द बनते हैं, यहां यकार के स्थान में इकार हुआ है । अव् धातु के वकारके स्थानपर उकार होकर " ऊति " शब्द रक्षा अर्थमें बनता है । प्रथ् धातुसे " पृथु " शब्द होता है । यहां रकार के स्थानपर ऋकार हुआ । इसी प्रकार म्रद् धातुसे " मृदु " शब्द हुआ है ।

१३ दो शब्दोंके मेल से कई शब्दबनते हैं जैसा वेद का "पुरुष" शब्द है यद्यपि यह समास प्रतीत नहीं होता है तथापि यह आरंभ में समास ही है देखिये- पुरुष, (पुर्-उष, पुर-वस, पुरि-वस, पुरि-उष्) अर्थात् जो पुरी नगरीमें वसता है, रहता है, या सोता है वह पुरुष कहलाता है। यह शब्द " पुर वस " इन दो शब्दों से बना है, और वस् के वकारका उ बन कर " पुर+उष=पुरुष" ऐसा शब्द हुआ। इसका उदाहरण देखिये-

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं
पुरुषेण सर्वम् ॥ ऋग्वेद ॥

" वृक्षके समान स्तब्ध होकर (दिवि) द्युलोकमें (एकः) एक (तिष्ठति) ठहरता है (तेन पुरुषेण इदं सर्वं) उसमें आत्मा ने यह सब (पूर्णं) परिपूर्ण हुआ है। " इस मंत्रमें पुरुष शब्द आत्मा अर्थ में आया है। नगर निवासी मनुष्य इस अर्थ में भी पुरुष शब्दका प्रयोग होता है। देहनिवासी यह भी इसका अर्थ है। इस प्रकार मर्यादा के न्यूनाधिक होनेसे पुरुष शब्दके अनेक अर्थ हो सकते हैं। अर्थात् शरीर रूपी पुरी में रहने वाला जीवात्मा, नगर रूपी पुरीमें रहने वाला नागरिक मनुष्य, जगत् रूपी पुरीमें रहने-वाला परमात्मा इत्यादि अनेक प्रकार से अनेक अर्थ "पुरुष" शब्द के होते हैं।

वेदके शब्दोंको क्षेत्र के अनुसार देखना होता है यह बात विशेष है। कई शब्द ऐसे हैं कि जो क्षेत्रके विस्तार से भिन्न अर्थ बताते हैं जैसा देखिये इन्द्र शब्द है, शरीरके क्षेत्रमें रहनेवाला जीवात्मा, राष्ट्रके क्षेत्रमें रहने वाला राजा और जगत् के क्षेत्रमें रहने वाला परमात्मा ये इसके अर्थ हैं। इसी प्रकार अर्थ करनेमें सहायता मिलती है

पाठ ६

इस पाठमें निम्नलिखित मंत्रोंका अभ्यास कीजिये—

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ऋ. १।।१३।९

(इळा) मातृभाषा, (सरस्वती) मातृसभ्यता और (मही) मातृभूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवताएं (मयोभुवः) कल्याण करनेवाली हैं। इसलिये ये तीनों देवताएं (बर्हिः) अंतःकरण में (अ-स्रिधः) न भूलते हुए (सीदन्तु) बैठें ।

" इळा " शब्द भाषा वाचक है, इळा और इडा ये दोनों शब्द " इल् " धातुसे बने हैं। इडा अथवा इला शब्दके अर्थ बहुत हैं परंतु यहां भाषा अर्थ अपेक्षित है। अर्थ स्पष्ट होने के लिये यहां पूर्वोक्त मंत्रके अर्थमें " मातृभाषा " ऐसा अर्थ लिया है। जो जिन लोगों की जन्म भाषा होती है वह उनकी मातृभाषा कही जाती है ।

" सरस्वती " शब्दका मूल अर्थ (सरस्) प्रवाहसे युक्त है। अनादि प्रवाहसे गुरुशिष्यपरंपराद्वारा जो विद्याकी संस्कृति और सभ्यता आती है, उस प्रवाहमयी सभ्यताका नाम सरस्वती है।

"मही" शब्द भूमिका वाचक है अर्थात् इसका अर्थ यहां मातृ-भूमि ही अभीष्ट है ।

ये तीनों देवियां हरएक मनुष्यके लिये उपासना करनेके योग्य हैं। इन तीन देवियोंके उपासक राष्ट्रके अंदर जितने अधिक होंगे उतना राष्ट्रका अधिक अभ्युदय निःसंदेह होगा। इसलिये वेदका कहना है कि इन देवियोंके लिये योग्य स्थान हरएक के हृदय में मिलना चाहिये। ये तीन देवियां कल्याण करनेवाली हैं इसलिये हरएक मनुष्य मनमें इन के विषयमें आदर धारण करे और इन के लिये अपना तन मन धन अर्पण करे ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही ।
भारती गृणाना ॥ अथर्व. ५। २७। ९

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती भारती। मही गृणाना।
वा. यजु. २७। १९

(इडा) वाणी, (सरस्वती) विद्या और (मही भारती) भरण-कर्त्री भूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवतायें (गृणाना) प्रशंसित होती हुई (बर्हिः सदन्तां) मनके अंदर बैठें। अर्थात् इनके लिये मनके अंदर योग्य आदर का स्थान हो।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं यान्तु शरणं निषद्य ॥
ऋ. २। ३। ८

(नः धियं साधयन्ती) हमारी बुद्धियोंका साधन करनेवाली (सरस्वती) विद्या, (इळा) मातृभाषा, तथा (विश्वतूर्तिः भारती)सबसे विशेष मातृभूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियां (स्व-धया) अपनी धारणा शक्तिके साथ (इदं बर्हिः) यह यज्ञस्थान अर्थात् यह मन अपना (शरणं निषद्य) आश्रय देकर (अ—छिद्रं) दोषरहित रीति से (पान्तु) सुरक्षित करें।

विद्या, भाषा और मातृभूमि ये तीन देवियां बडी शक्तिशाली हैं। अपनी शक्तिसे हमें आश्रय देकर हमारेसे यह हमारा शत सांवत्सरिक यज्ञ पूर्ण करावें। अर्थात् हमारी पूर्ण आयुतक इन तीन देवियोंकी भक्ति हमारेसे होती रहे।

आभारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥
ऋ. ७। २। ८

(भारतीभिः भारती) भारतीके अर्थात् भूमिकी उपरकी जनता के साथ मातृभूमि (देवैः मनुष्यैः इळा) दिव्य मनुष्योंके

साथ मातृभाषा और (सारस्वतेभिः सरस्वती) विद्याभक्तोंके साथ विद्या देवी, ये तीनों देवियां (सजोषा) समान प्रीतिसे (अर्वाक्) हमारे पास आकर (बर्हिः) अन्तःकरणमें (सदन्तु) बैठें।

हरएक मनुष्यके अंदर इन तीन देवियोंके विषयमें भक्ति अवश्य रहनी चाहिये। (१) सब देशबांधवों के साथ मातृभूमि (२) मातृ भाषाभाषियोंके साथ मातृभाषा (३) और समान सभ्यता वालोंके साथ मातृसभ्यता, ये तीन देवियां हैं, इनकी उपासना हरएक मनुष्यको करनी चाहिये।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ ऋ. १।३।४

(पावका) पवित्र करनेवाली (धिया—वसुः) बुद्धिके साथ रहने वाली, (वाजेभिः वाजिनीवती) अनेक बलों से बलवती यह (सरस्वती) सरस्वती देवी (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञकी (वष्टु) इच्छा करे। अर्थात् हमारे संपूर्ण कर्मोंमें विद्या विराजमान रहे।

सरस्वती विद्यादेवी मनुष्योंको पवित्र करनेवाली, बुद्धिके साथ रहकर कार्य करनेवाली और विविध शक्तियोंसे युक्त है। यह देवी हमारी वाणीकी पूर्णता करनेवाली होवे।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती॥ ऋ. १।३।११

यह (सरस्वती) विद्यादेवी (सूनृतानां) उत्तम भावनाओंकी (चोदयित्री) प्रेरक, (सुमतीनां चेतन्ती) उत्तम बुद्धियोंको चेतना देनेवाली है, वह हमारे वाणीके यज्ञको (दधे) धारण करे।

विद्या देवीसे मनके अंदर उत्तम शुभ भावनाओंका आविष्कार होता है, बुद्धिकी भी पवित्रता होती है, इसलिये इस विद्यादेवीसे हमारा वाग्यज्ञ पवित्र होवे।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना ।
धियो विश्वा विराजति ॥ ऋ. १ । ३ । १२

(सरस्वती) विद्यादेवी (महः अर्णः) महान हलचल करने वाले समुद्रके समान है, वह (केतुना) विज्ञानसे (प्रचेतयति) चेतना उत्पन्न करती है और (विश्वा धियः) सब बुद्धियोंको (विराजति) प्रकाशित करती है ।

जिस प्रकार समुद्रमें सदा हलचल होती रहती है उसी प्रकार विद्याभी जनतामें हलचल मचाती है। विद्यादेवीके सामर्थ्यका पार लगना कठीन है । जहां विद्याके संस्कार होते हैं वहां उन्नति की हलचल शुरू होती है । मानो विद्याही अपने ज्ञानद्वारा सबको चेतना और उत्साह देती है और सबकी बुद्धियोंको प्रकाशित करती है । अर्थात् विद्याके प्रकाशसे प्रकाशित हुई बुद्धियां ही विश्वका राज्य कर रही हैं ।

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामविट्र्यवतु ॥ ऋ. ६ । ६१ । ४

(वाजेभिः वाजिनीवती) अनेक बलोंसे बलयुक्त (सरस्वती) विद्यादेवी (धीनां अवित्री) हमारी बुद्धियोंकी रक्षा करनेवाली (नः प्र अवतु) हम सबकी उत्तम रक्षा करे ।

विद्यासे अनंत बल प्राप्त होते हैं, और बुद्धियोंपर शुभ संस्कार भी अनंत होते हैं । इस प्रकार शुभ विद्यासे विद्वान्, बलवान् और सुबुद्धिमान होकर हरएक मनुष्य अपना रक्षक बने और कभी परावलंबी न बने ।

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ऋ. ६ । ६१ । ६

हे (सरस्वति) विद्यादेवि ! तू (वाजेषु) बलों में भी (वाजिनी) बलयुक्त है, इस लिये तू (अव) हमारी रक्षा कर । (पूषा इव)

पोषक के समान (नः) हमारे लिये (सनिं रद) धनादि भोग दे।

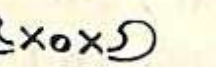
सरस्वती विद्यादेवीसे अनेकानेक धन प्राप्त होते हैं। विद्यासेही सुख साधन बढते रहते हैं। तथा वैयक्तिक और सामुदायिक उन्नति भी विद्याके बढने से हो सकती है।

यस्या अनंतो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः।
अमश्चरति रोरुवत्॥ ऋ० ६।६१।८

(यस्याः) जिस विद्याका (अनन्तः) अंतरहित (अ-ह्रुतः) अकुटिल सीधा, (चरिष्णुः) आगे बढनेवाला (अर्णवः) समुद्र के समान गंभीर (रोरुवत्) शब्दमय (त्वेषः) तेजस्वी (अमः) सामर्थ्य (चरति) फैल रहा रहै।

इस जगत् में विद्याका वेग ऐसा बढ रहा है कि उसका कोई अंत नहीं है, जो सीधा बढनेवाला, गंभीर, तेजस्वी और बडा प्रभावशाली है। इसलिये इस विद्याके वेग को अपने अनुकूल बनाना, तथा स्वयं उस ज्ञानके वेगसे वेगवान् बनना चाहिये।

सूचना— विद्या प्रशंसाके ये मंत्र पढ़ें, अर्थ का मनन करें और उसपर बहुत विचार करें।



पाठ ७

दूध वाचक "पयः" शब्द है, इसका जल यह भी एक अर्थ है। यह शब्द "पा" (पीना) इस धातुसे बनता है। (पीयते तत् पयः) जो पीया जाता है उसका नाम "पयः" (दूध, जल) है।

दूध का दूसरा संस्कृत नाम "क्षीर" है, यह शब्द "क्षर्" (झरना, छरना) इस धातुसे बनता है, जो (क्षरति) अर्थात् स्तनसे झरता है, चूता है उसको "क्षीर" अर्थात् दूध कहते हैं।

" अंशु " नाम सोमका है। सोमवल्लि या विशेषतः सोम रस का यह नाम है। यह शब्द " अश्+ शं " इन दो शब्दोंसे बनाया जाता है (अशनाय शं भवति) अशन अर्थात् खानेके लिये शं अर्थात् हितकारी होता है। इस का उदाहरण यह है-

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ॥ ऋ. १०। ९४। ९

"(अंशुं) सोमका (दुहन्तः) रस निकालनेवाले (गवि) चर्म पर (अध्यासते) बैठते हैं। " यहां अंशु शब्दका प्रयोग सोम अर्थ में किया है। भक्षण करनेसे आनंद देनेवाला इस अर्थ में यह शब्द यहां है।

चर्म शब्द " चर " (चलना) धातुसे बनता है, शरीरके संपूर्ण बाह्य भागपर यह चलता है, जाता है या फैलता है।

वृक्ष शब्द " व्रश्च " (छेदन करना) इस धातुसे बना है जो छेदा जाता है अथवा जिससे शत्रुको छेदा जाता है इस अर्थ में यह शब्द बनता है। पहिले अर्थ में वृक्ष अर्थ और दूसरे अर्थ में लकडीसे बननेवाला धनुष्य अर्थ है इस दूसरे अर्थका उदाहरण देखिये-

वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः
प्रपतान्पूरुषादः ॥ ऋग्वेद. १०। २७। २२

" (वृक्षे वृक्षे) प्रत्येक धनुष्य पर (नियता) चढाई या तनी हुई (गौः) चर्म से बनी डोरी (अमीमयत्) शब्द करती है और (पुरुषादः) मनुष्यको खानेवाले (वयः) पक्षियों के सदृश बाणोंको (प्रपतान्) फेंकती हैं। "

यहां तीन शब्द मनन करने योग्य हैं-

१ वृक्ष- लकडीसे बना धनुष्य
२ गौ- गोचर्मसे बनी धनुष्यकी डोरी
३ वयः— पक्षियोंके पंख लगे बाण

यहां मूल शब्द ही उससे बने हुए पदार्थ के लिये प्रयुक्त हुआ है। वृक्ष शब्द खटिया, मंचक, मेज इस अर्थ में भी वेदमें प्रयुक्त है क्योंकि वृक्षकी लकडीसे ये पदार्थ बनते हैं। वेद की यह विशेषता पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये। अंश के लिये पूर्णका प्रयोग वेदमें बहुत स्थानपर होता है और उसके ये उत्तम उदाहरण हैं। बाणपर पक्षियोंके पंख लगते हैं इस लिये पक्षियोंका एक अंग बाणोंपर लगता है इस कारण बाणोंके लिये पक्षिवाचक शब्द का प्रयोग होता है। इसी प्रकार गोचर्मसे धनुष्यकी ज्या दोरी बनती है इसलिये ज्या के लिये गो शब्दका प्रयोग होता है, दूध गौ से मिलता हैं इस लिये दूधके लिये गो शब्दका उपयोग होता है। इसी प्रकार पाठक विचार करके जानें।

" निर्ऋति " शब्द पृथ्वीका वाचक है क्यों कि यह (नि+रम्= निरमयति) मनुष्यादि प्राणियों को वारंवार रममाण करती है, इससे प्राप्त होनेवाले फलों या फूलोंसे प्राणिमात्र रममाण होते हैं।

" निर्ऋति" शब्दका दूसरा अर्थ "कष्ट, दुर्गति, बुरी अवस्था" आदि प्रकार होता है। यह शब्द उपरोक्त शब्द से भिन्न शब्द है। यह शब्द " निर्+ऋच्छ " (कष्ट प्राप्त होना) इस धातुसे बनता है। पाठक यहां देखें कि यद्यपि ये दोनों शब्द एक जैसे दीखते हैं तथापि इनके बननेमें कितना अंतर है और इनके अर्थ में भी कितना भेद हैं। वस्तुतः ये दो शब्द एक दूसरे से भिन्न ही हैं।

" अंतरिक्ष " शब्द मध्य अवकाश अंतरिक्ष लोक का वाचक है (अंतरि) बीचमें (क्ष) निवास देनेवाला। क्षि धातु निवास करनेके अर्थ में है। यह शब्द पृथ्वी और सूर्यके बीच के स्थान का वाचक है। यह लोक अपने अंदर (अंतरि) अनेक पदार्थोंको (क्ष)स्थान देता है यह इसका अर्थ है।

" शंतनु " शब्द " शं+तनु " इन दो शब्दोंके योगसे बना है, (शं) सुखको जो (तनु) फैलाता है। " तन् " धातु फैलानेके अर्थमें है। इसका दूसरा भी अर्थ होता है, (शं) सुख है (तनु) शरीरमें जिसके अथवा शरीरसे जो सुखी है। इस रीतिसे शब्द सिद्ध करनेमें तन् धातुसे यह शब्द नहीं बना, परंतु दो शब्दोंका समास हुआ है। पाठक पूर्व शब्दसे इस शब्द की तुलना करें।

" पुरोहित " शब्दमें दो शब्द हैं। " पुरः + हितः " इसका अर्थ (पुरः) आगे अग्र भागमें (हितः) रखा हुआ। सब कार्य में जिसको आगे रखा जाता है।

" स्वः " शब्दके वेदमें अनेक अर्थ हैं, परंतु उसका "आदित्य" भी एक प्रधान अर्थ है। (सु + अर् = स्वर् = स्वः) ये दो शब्द इसमें हैं। (सु) उत्तम प्रकारकी (अर्) गति से युक्त होने के कारण " स्वः " शब्द आदित्य वाचक होता है। इसी प्रकार शोभन गतिसे युक्त पदार्थोंका यह नाम हो सकता है। इसीप्रकार दूसरा अर्थ " सु + ईरणः " अर्थात् उत्तम प्रकार से दूर करनेवाला, सूर्य अंधकारको दूर करता है, इसलिये उसका वाचक यह शब्द है।

" नाक " शब्द सूर्य वाचक है। नायक शब्द के मध्य यकार को उडानेसे " नाक " शब्द होता है अर्थात् यह नायक अर्थमें है। सूर्य अपनी ग्रहमाला का नायक होनेसे इसका यह नाम है। इसका दूसरा अर्थ " न + अ + क " इसप्रकार व्युत्पत्तिसे बनता है। क शब्द सुखवाचक है। अक शब्द दुःख वाचक बना, फिर उसका नकारने निषेध किया, इससे न + अक (नाक) शब्द सुख वाचक बना। यह सूर्य सबके सुख का हेतु है इसलिये इस का यह नाम है।

" दिशा " शब्द " दिश् " धातुसे बना है, दिशा बताने का भाव इसमें है। " काष्ठा " शब्द भी दिशा वाचक है, (क्रान्त्वा स्थिताः) उलांघकर ठहरती है, जितना भी आगे देखा जाय उतनी आगे भी वही दिशा रहती ही है, सब मर्यादा को उल्लांघकर वह रहती है इसलिये उसका यह नाम है।

सूर्यका भी नाम " काष्ठा " है इसलिये कि वह सबको उल्लांघ कर ठहरता है। इसीप्रकार अन्यान्य पदार्थोंका नाम काष्ठा होता है। जिनमें उक्त गुण होगा।

" शरीर " शब्द " शृ " (हिंसा करना) इस धातुसे बनता है। शरीर नष्ट होता रहता है, क्षीण होता रहता है इस अर्थ का यह धातु इसमें है।

" तमः " शब्द अंधकार वाचक है, यह अंधकार फैला हुआ होता है, इसलिये "तन्" (फैलना) इस धातुसे यह शब्द बनता है, जो एकदम सर्वत्र फैल जाता है।

" दास " शब्द "दस " (क्षयको प्राप्त होना) इस धातुसे बनता है। जो दुष्ट कर्मों द्वारा अपना नाश करता है वह दास शब्द द्वारा बोधित होता है। गुलाम, हीन, दस्यु आदि जो हीन कर्ममें रमता है और अपने हीन कर्मोंद्वारा अपना नाश करता है उसका यह नाम है।

सूचना।

पाठक इस प्रकार वैदिक शब्दोंके अर्थ देखें और उनकी व्युत्पत्ति करनेका विधि जाने। इस पुस्तकमें कई शब्दों की व्युत्पत्तियां और निरुक्तियां दी हैं, इनका विचार पूर्वक मनन करनेसे पाठकों को यह बात ज्ञात हो सकती है।

पाठ ८

इस पाठमें निम्न लिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये—

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥
ऋ० १० । १७ । ७

(देवयन्तः) देवता बननेकी इच्छा करने वाले (सरस्वतीं) विद्यादेवी को (हवन्ते) बुलाते हैं, प्राप्त करते हैं। (अध्वरे तायमाने) यज्ञके फैलानेके समय (सरस्वतीं) विद्यादेवी की उपासना होती है। (सु-कृतः) अच्छा कर्म करने वाले (सरस्वतीं अह्वयन्त) विद्या देवी को ही पुकारते हैं। यह सरस्वती अर्थात् विद्यादेवी (दाशुषे) दाताको (वार्यं दात्) सामर्थ्य देती है।

उक्त अवस्थाओंमें विद्यादेवी की उपासना लोग करते हैं। विद्यासे बल बढता है और सब उन्नति और पुरुषार्थ करना मनुष्य के लिये सुकर होता है। इस लिये हरएक मनुष्यको अपने अंदर विद्याका बल बढाना चाहिये। ज्ञानसे अपने सब सुख साधन परिपूर्ण करने चाहिये।

(अथर्व-- १२ । १)

" वैदिक धर्म " में राष्ट्रीय भावना और सार्वजनिक हित की कल्पना प्रमुख होनेके कारण " मातृभूमि " के विषय में अत्यन्त आदर का भाव होना स्वाभाविक ही है। अथर्व वेदमें एक "वैदिक राष्ट्रीय-गीत " अथवा " मातृभूमिका सूक्त " इसी मातृभूमि की भक्तिका द्योतक प्रसिद्ध है सूक्त कारोंने इसका विनियोग निम्नप्रकार किया है-

(१) ग्राम-पत्तनादि-रक्षणार्थं ।
(२) पुष्टिकामः,"'कृषिकामः,"व्रीहियवान्नकामः,"'पुत्रधनादि-
कामः,"'मणिहिरण्यादिकामः, पृथिवीमहाशांतिकामः,"'
भूमिकामः"'पृथिवीं उपतिष्ठते । (अथर्व-सा० भा०)

" (१) ग्राम पत्तन नगर राष्ट्र आदिकी रक्षा के समय, तथा (२) पुष्टि, कृषि, धनधान्य आदिकी प्राप्तिके प्रयत्न करने के समय, भूमिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेके समय तथा मातृभूमिमें जिस समय अशांति होती है, उस समय देश में पुनः शान्ति प्रस्थापित करने के अवसर पर इस "भूमि-सूक्त" का पाठ किया जाता है।

इस लिये हर एक वैदिक धर्मी को इस सूक्त का अध्ययन तथा मनन करना आवश्यक है। इस सूक्तके कई मंत्र यहां दिये जाते हैं।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पन्त्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

(सत्यं) सत्य, (बृहत्) बल, (ऋतं) न्याय्य व्यवहार,(उग्रं) क्षात्र तेज, (दीक्षा) दक्षता, (तपः) द्वन्द्व सहन करनेकी शक्ति, (ब्रह्म) ज्ञान, (यज्ञः) सत्कार-संगति-दानात्मक शुभ कर्म, ये आठ गुण (पृथिवीं) मातृभूमि का (धारयन्ति) धारण करते हैं॥ (सा) वह (नः) हमारी (पृथ्वी) मातृभूमि, जो हमारे (भूतस्य) भूत और (भव्यस्य) भविष्य तथा वर्तमान अवस्था की (पत्नी) पालन करने वाली है, वह (नः) हमारे लिये (उरुं लोकं) विस्तृत स्थान (कृणोतु) करे ।

मातृभूमि की स्वतंत्रताका संरक्षण जिन श्रेष्ठ सद्गुणोंसे होता है वे आठ गुण ये हैं - (१) सत्यनिष्ठा, (२) बल संवर्धन, (३) न्याय्य व्यवहार, (४) प्रबल क्षात्र तेज, (५) कर्तव्य दक्षता, (६) शीत उष्ण सहन करने की शक्ति,(७) ज्ञान-आध्यात्मिक,

आधिभौतिक और आधिदैविक-ज्ञान तथा विज्ञान, और (८) श्रेष्ठों का सत्कार, आपस की एकता और अनाथों की सहायता करनेके लिये आवश्यक कर्तव्य कर्म करना। इन गुणों से अर्थात् ये गुण जनातमें बढनेसे-मातृभूमि का धारण होता है। इन गुणों से जिस मातृभूमिका धारण हुआ है, ऐसी मातृभूमि वहां के लोगोंके भूत भविष्य और वर्तमान कालीन अवस्था का संरक्षण करती है। और वहां के लोगों को अपने देशमें जितना चाहिये उतना विस्तृत स्थान, अर्थात् फैलानेके लिये स्थान देती है। तात्पर्य यह है कि उक्त आठ गुणों से मातृभूमि की स्वतंत्रता का संरक्षण हो और अपने देशमें हरएक को अपने विस्तार के लिये पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो ॥ १ ॥

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नाना वीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥२॥

(यस्याः) जिस मातृभूमिके (मानवानां) मननशील मनुष्यों के (मध्यतः) अंदर (उत्-वतः) उच्चता और (प्र-वतः) नीचता तथा (समं) समता के विषयमें (बहु) बहुत ही (अ-सं-बाधं) निर्वैरता है। और (या) जो (नाना वीर्या ओषधीः) नाना प्रकारके वीर्योंसे युक्त औषधियों को (बिभर्ति) धारण पोषण करती है, (नः पृथिवी) वह हमारी मातृभूमि (नः प्रथतां) हमारी कीर्तिका (राध्यतां) साधन होवे।

जिस हमारे राष्ट्र के विचारशील मनुष्यों में परस्पर द्रोहभाव नहीं है प्रत्युत उनमें पूर्ण ऐक्यभाव है, और उनमें उच्चता, नीचता और समता के विषय के कोई झगडे नहीं हैं। तथा जो हमारी मातृभूमि विविध गुणों से युक्त अनन्त औषधिवनस्पतियों को उपजाती है, वह हमारी मातृभूमि हमारे यश को फैलाने के लिये कारणीभूत हो ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सं बभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३ ॥

(यस्यां) जिसमें समुद्र (उत) और (सिन्धुः) नदी तथा (आपः) जलाशय बहुत हैं और (यस्यां) जिसमें (कृष्टयः) खेतियां (अन्नं) अन्न की (सं बभूवुः) उत्पत्ति करतीं हैं (यस्यां) जिसपर (इदं प्राणत्)यह श्वास लेने और (एजत्) हलचल करने वाला प्राणिजात (जिन्वति) चलता फिरता है, (सा) वह (भूमिः) हमारी मातृभूमि (नः) हमको (पूर्व--पेये) पूर्ण पेय अर्थात् समस्त खानपान के पदार्थ (दधातु) दे ।

जिस हमारी मातृभूमि में समुद्र, नद, नदियां, तालाव, कूप, झील, झरने आदि बहुत हैं, उनके जलसे सब कृषीवल अनेक प्रकार की खेतियां करके जहां विविध धान्यादि उत्पन्न करते हैं, तथा उस अन्न और पान का सेवन करके अनेक उत्तम उत्तम प्राणी जहां आनन्द से रहते हैं वह हमारी मातृभूमि उत्तम खानपान हमें देती रहे । अर्थात् ऐसा कभी न हो कि हमारी मातृभूमि से उत्पन्न हुए अन्नसे दूसरे पुष्ट होते रहें और हमको खाने को कुछ भी न मिले ॥ ३ ॥

यस्यां चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥

(यस्याः पृथिव्याः) जिस मातृभूमि की (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओं में (कृष्टयः) विविध खेतियां (यस्यां) जिसमें (अन्नं) अन्न को (सं बभूवुः) उत्पन्न करती हैं और उससे (या) जो भूमि (एजत् प्राणत्) घूमनेवाले प्राणिमात्र को (बहु-धा) बहुत प्रकार से (बिभर्ति) पुष्ट करती है (सा) वह (नो भूमिः) हमारी मातृभूमि हमें (गोषु) गौओं में और (अन्ने अपि) अन्नमें भी (दधातु) रक्खे ।

जिस हमारी मातृभूमि में चारों दिशाओं में खेती से विविध प्रकार का अन्न उत्पन्न होता है, जिस को खा कर सब प्राणिमात्र हृष्ट पुष्ट होते हैं और आनन्द से जिस पर विचरते हैं, वह भूमि हमें विपुल अन्न और गौवें देनेवाली होवे। अर्थात् हम सदा अन्न और गौवों के बीचमें मातृभूमि की कृपासे रहें। ऐसा कभी न हो कि हमारी मातृभूमि की गौवों का दूध और कृषि से उत्पन्न हुआ अन्न दूसरे ही ले जांय और हम वंचित ही रहें ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना वि चक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

(यस्यां) जिस मातृभूमि में हमारे (पूर्वे) प्राचीन (पूर्व-जनाः) पूर्वजों ने (वि-चक्रिरे) विविध कर्तव्य किये थे और (यस्यां) जिस में (देवाः) देवों ने (असुरान्) असुरों को (अभ्यवर्तयन्) हराया था। तथा जो (गवां) गौओं, (अश्वानां) घोडों (च वयसः) और पक्षियों का (वि-स्था) विशेष निवास स्थान है, वह (नः पृथिवी) हमारी मातृभूमि हमें (भगं) ऐश्वर्य और (वर्चः) तेज (दधातु) देवे।

जिस मातृभूमि में हमारे प्राचीन पूर्वजोंने विविध प्रकार के पराक्रम किये थे, जिसमें सज्जनों ने दुष्टों का पराभव किया था और जिसमें गौवें, घोडे तथा अन्य पशुपक्षी भी आनन्द से रहते हैं, वह हमारी आश्रयदात्री मातृभूमि हमें ऐश्वर्य और तेज देनेवाली होवे ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रवृषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

(विश्वं-भरा) सब की पोषण करनेवाली, (वसुधानी) रत्नों की खान, (प्रतिष्ठा) सब का आधार, (हिरण्य वक्षाः) जिसके अन्दर सुवर्ण है, (जगतः निवेशनी) प्राणियों का निवास

कराने वाली, (वैश्वा॰॰नरं) सब मनुष्य समूह रूप (अग्नि) अग्निका (बिभ्रती) धारण पोषण करनेवाली और (इन्द्र॰॰वृषभा) इन्द्रसे जिसपर वृष्टि होती है, ऐसी हमारी (भूमिः) मातृभूमि (नः) हमको (द्रविणे) धन और बल के बीचमें (दधातु) रक्खे ।

जो हमारी मातृभूमि सब प्रकारके रत्न, सोना, चांदी आदि की खान है, सब प्रकार के खान पान देकर जो सब प्राणियों का पोषण कर रही है,मनुष्यसमुदायरूपी राष्ट्रीय अग्निको जो जगाती है और जहां स्वयं इन्द्र ही वृष्टि करता है वह हमारी श्रेष्ठ मातृभूमि हमें सब प्रकारके धनोंके बीचमें रखे ॥ ६ ॥

यां रक्षंत्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

(विश्व-दानीं) सब कुछ देनेवाली (यां पृथिवीं भूमिं) जिस विस्तृत मातृभूमि की (अ-स्वप्नाः) सुस्ती न करने वाले (देवाः) देवता लोग (अ-प्रमादं) प्रमाद रहित होकर(रक्षन्ति) रक्षा करते हैं, (सा) वह (नः) हमको (प्रियं मधु) प्रिय मधु (दुहां) देती रहे (अथो) और (वर्चसा) तेजके साथ (उक्षतु) बढावे ।

जिस हमारी मातृभूमि की रक्षा ज्ञानी और शूर पुरुष प्रमाद-रहित होकर और सुस्ती को छोडकर करते आये हैं, वह हमें सब कुछ देनेवाली मातृभूमि सदा हमारे लिये मीठे मीठे पदार्थ देती रहे और हमारा तेज और बल बढाती रहे ॥ ७ ॥

पाठ ९

" पणि " शब्द बनियेका वाचक है, यह " पण् " (व्यवहार करना) इस धातुसे बनता है। " वणिक् " शब्द भी उसी पणि शब्द का ही रूप है। पणि- पणिक- वणिक- वणिक् इस प्रकार इस की उत्पत्ति है। (पण्यं नेनेक्ति) बेचनेके पदार्थ नित्य ले जाता है। इसलिये उसको वणिक् कहते हैं।

" बिल " शब्द की उत्पत्ति बडी विचित्र है। " भृ " (भरण करना) इस धातुसे " भर " शब्द बनता है। भर- भल- भिल- बिल इस प्रकार अंतमें बिल शब्द बना। भ अक्षर का ब बनता है और अकार का इ भी बनता है।

" कृष्ण " शब्द कृष् धातुसे बना है। जिसमें कर्षण अथवा निकृष्टता होती है उस वर्णका नाम कृष्ण (काला) है।

" अहः " शब्द दिनवाचक है (उपाहन्ति अस्मिन् कर्माणि) इस दिनमें सब कर्म किये जाते हैं। अ+हर् शब्द में यहां "आ+हृ" धातुकी कल्पना की है। इन दोनों शब्दों के उदाहरण के लिये निम्न लिखित मंत्र देखिये-

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः ॥

ऋ० ६ । ९ । १

(" कृष्णं अहः च) काला दिन अर्थात् रात्री और (अर्जुनं अहः च) श्वेत दिन अर्थात् दिन ये दोनों (रजसी) शोभा वाले (वेद्याभिः) ज्ञातव्य निज प्रकृतिके साथ (विवर्तेते) सदा विरुद्ध भावके साथ रहते हैं। " अर्थात् दिन और रात्री अपने विरुद्ध गुणों से युक्त हैं।

र और ल का अभेद होता है। वेदमें यह नियम बहुत स्थानोंमें दिखाई देता है जैसा मेघवाचक " उपर, उपल " ये शब्द लीजिये।

र के स्थानपर ल हुआ है। वास्तवमें उपल शब्द पत्थरका वाचक है। मेघोंसे ओले (पत्थर जेसे) गिरते हैं इस लिये मेघोंका ही यह नाम हुआ। " उपर " शब्द में "उप+रम्" धातु है। जिस में लोग रमते हैं, जिसकी शोभा देखकर जन रमते हैं उसका नाम " उगर " (मेघ) है।

प्रथम शब्दकी भी उत्पत्ति देखिये--प्रकृष्टतम--प्रतम-- प्रथम इस प्रकार बीचके दो अक्षर लुप्त हो गये हैं और तके स्थानपर थ हुआ है।

" शुष्म " शब्द बलवाचक है, " शुष् " (शोषण करना) इस धातुसे बनता है। बल से शत्रु की शक्ति शुष्क की जाती है।

" सानु " शब्द पर्वत शिखर का वाचक है, इसकी निरुक्ति ऐसी है। (सं + उत् + नुन्न) समुन्नुन्न= समुन्नु=सन्नु= सानु मूल शब्द का संक्षिप्तरूप इस प्रकार बना। समुन्नुन्न शब्द का अर्थ " अत्यंत उच्च स्थान, " यही सानु शब्दका अर्थ है।

" पर " शब्द " पार " शब्द का ही रूप है, पर शब्द का अर्थ परला है।

"मुहूर्त" शब्द कुच्छ कालका वाचक है, इसकी उत्पत्ति "मुहुः + ऋतु"=मुहुर्+ऋतु= मुहूर्त " यह है। ऋतुका अर्थ कालविभाग है, वारंवार होने वाला काल विभाग मुहूर्त कहलाता है।

" काल " शब्द " कल् " (गतौ) धातुसे बनता है। यह समय सदा चल रहा है इसलिये इसको काल कहते हैं। कल् धातुका अर्थ नाश भी है। काल सबका संहार करता है इसलिये उसका यह नाम है।

" पाणि " शब्द हाथ का वाचक है। पण धातु व्यवहार काम काज करना आदिका वाचक है। इससे पाणि शब्द बनता है। हाथ से काम काज किया जाता है इस लिये यह नाम सार्थ है।

" पथ, पन्था " शब्द मार्ग वाचक है, पत् अथवा पथ् धातुसे यह बनता है, पांवसे चला जाता है, एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुंचाता है, इसलिये इसका यह नाम हुआ है।

" अपत्य " शब्द में (अ+पत्य) ये दो शब्द हैं। अपतन अर्थात् जिससे पतन नहीं होता, कुलका अधःपात जिससे नहीं होता, उसका नाम अपत्य अर्थात् संतान है।

" दुहिता " शब्द पुत्रीका वाचक है, " दूरे+हिता " अर्थात् दूर रहनेपर हितकारी यह इसका आशय है। दूरे हिता= दुर्हिता= दुहिता इस प्रकार इसकी निरुक्ति है।

" श्मशान " शब्द प्रेतदाह करनेके स्थान का वाचक है इस में श्म+शान ये दो शब्द हैं। श्म शब्द शरीर वाचक और शान शब्द शयन वाचक है। जहां शरीर अंतमें शयन करता है उस स्थानका वाचक यह शब्द है।

" श्मश्रु " शब्द बालोंका वाचक, दाढीमूंछका वाचक है। इस का अर्थ (श्म+श्रु) श्म अर्थात् शरीरमें श्रित अर्थात् जो आश्रित है, शरीरके आश्रयसे जो रहता है, उसका नाम श्मश्रु है।

" लोम " शब्द बालका वाचक है। यह " लु "(काटना)इस धातुसे बना है। जो काटे जाते हैं उनका नाम लोम है।

" जामि " शब्द बहिनका वाचक है, "जन्" (उत्पन्न करना) इस धातुसे यह शब्द बनता है। इसमें पति पुत्रको उत्पन्न करता है।

" निषाद " शब्द पंचम वर्णका वाचक है, " नि+षद " (नीचे बैठना) इस धातुसे इसकी उत्पत्ति है, सबसे नीचे बैठनेका अधिकारी यह है। आर्य धर्म में पांच जन हैं, उसका वर्णन निम्नलिखित मंत्रमें पाठक देखें—

यत्पांचजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद् बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः॥ ऋ० ८।६३।

(यत्) जो (पांचजन्यया विशा) पांचों जनोंके समूहरूप प्रजासे (इन्द्रे) राजाके लिये (घोषः असृक्षत) शब्द निकलते हैं तब (सः विपः) वह बुद्धिमान, (अर्यः) समर्थ श्रेष्ठ, (मानस्य क्षयः) संमान का अधिष्ठाता राजा (बर्हणा अस्तृणात्) अपने सामर्थ्य से शत्रुओं को दूर करता है।

इसमें पंच जनोंका वर्णन है और पंचजनों की शक्तिका भी वर्णन इसमें है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पंचजन हैं। इनकी सहायता राजाके लिये मिलनी चाहिये। यह भाव उक्त मंत्रमें है।

" अन्न " शब्द " अद् " (खाना) इस धातुसे बना है। जो खाया जाता है उसका नाम अन्न है।

" बल " शब्द शक्तिका वाचक है। यह "भृ" (धारणपोषण करना) इस धातुसे बनता है। भृ धातुसे भर शब्द बनता है और उससे—भर—बर—बल इस प्रकार रूपान्तर को प्राप्त होता है।

" धन " शब्द द्रव्य अथवा संपत्ति का वाचक है। यह शब्द तर्पण अर्थवाली " धि " अथवा "धन्" धातुसे बना है। जिससे तृप्ति होती है, जिससे धन्यता प्रतीत होती है उसका नाम धन है।

" क्षिप्र " शब्द शीघ्रताका वाचक है, इसका साम्य " सं—क्षिप्त " शब्द के साथ है। समयको संक्षिप्त रूपमें लानेका नामही शीघ्रता करना है।

" बहु " शब्द प्रसिद्ध है, वह " प्रभु " शब्दके साथ संबंधित है। प्रभु पभु पहु बहु इस प्रकार यह शब्द बन गया।

" गृह " शब्द घरका वाचक है यह " ग्रह " (लेना) धातु से बना है। (गृह्णाति इति गृहं) जो कुटुंबियोंको लेता है उसका नाम घर है।

" सुख " शब्द सब जानते ही हैं। (सु) उत्तम प्रकारसे (खं)

इंद्रिय जिससे रहता है उसका नाम सुख है। जिससे इंद्रियों को आराम होता है।

सूचना।

इस प्रकार पाठक शब्दोंकी व्युत्पत्तियां देखें और अनुभव करें कि यौगिक अर्थ इस रीतिसे देखे जाते हैं।

पाठ १०

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः॥
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥ ८॥

(अग्रे) प्रारंभ में (या) जो (अर्णवे) समुद्र के (अधि) ऊपर (सलिलं) जलरूप (आसीत्) थी। और (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (मायाभिः) बुद्धि और कुशलता आदि से (यां) जिस की (अन्वचरन्) सेवा करते आये हैं (यस्याः पृथिव्याः हृदयं) जिस पृथ्वीका हृदय (परमे व्योमन्) बडे आकाशमें (सत्येन आवृतम्) सत्य से आवृत होने के कारण (अ-मृतं) अमृतरूप है। (सा) वह (नः) हमारी (भूमिः) मातृभूमि हमारे (उत्तमे राष्ट्रे) उत्तम राष्ट्र में (त्विषिं) तेज और (बलं) बल (दधातु) धारण करे।

प्रारंभमें जो समुद्र के बीचमें थी, जिसका बीचका भाग भी सत्य आत्मा से व्याप्त है, जिस की सेवा ज्ञानी लोग बुद्धि से और कुशलता से करते आये हैं, वह मातृभूमि हमारे श्रेष्ठ राष्ट्रमें उत्तम तेजस्विता और बल की वृद्धि करे॥ ८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥ ९॥

(यस्यां) जिस में (परि-चराः) मातृभूमि की सेवा करने वाले स्वयं सेवक (समानीः आपः) जल के समान शांतिसे और समानभाव से (अहोरात्रे) दिनरात्र (अ-प्रमादं) प्रमादरहित होकर (क्षरन्ति) चलते हैं। (सा) वह (भूरि--धारा) अनेक धारण शक्तियों से युक्त (नः भूमिः) हमारी मातृभूमि, हमें (पयः दुहां) दूध और अन्न देवे (अथो) तथा (वर्चसा) तेज के साथ (उक्षतु) बढावे।

जिस मातृभूमिकी सेवा, उत्तम स्वयंसेवक शांति और समान भावनासे युक्त तथा प्रमादरहित होकर दिनरात करते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमें उत्तम भक्ष्य भोज्य और पौष्टिक पेय देवे और हमारे तेजकी वृद्धि करे ॥ ९ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

(यां) जिसको (अश्विनौ) अश्विनी देवोंने (अमिमातां) मापा है, (यस्यां) जिसमें विष्णुने (वि चक्रमे) पराक्रम किया था, (शचीपतिः इन्द्रः)प्रज्ञाशील इन्द्रने (यां)जिसको (अन्-अमित्रां) शत्रुरहित (चक्रे) किया था। (सा) वह (नः) हमारी (माता भूमिः) मातृभूमि हमारे लिये भोग्य पदार्थ देवे, जिस प्रकार पुत्र के लिये माता (पयः) दूध देती है।

जिस भूमि को अश्विनी देवों (वेगवान् ज्ञानियों) ने मापा है, विष्णुने जिस में विविध पराक्रम किये हैं और कर्म कुशल प्रज्ञाशील इन्द्र अर्थात् नरेंद्रों ने जिस को शत्रुरहित किया है अर्थात् जिसके शत्रुओं को भगया है, वह हमारी मातृभूमि हमें सब भोग और ऐश्वर्य देवे ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्टां पृथिवीमहम् ॥११॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि! (ते) तेरे (गिरयः) पहाड, (हिमवन्तो पर्वताः) हिमवाले पर्वत और (अरण्यम्) वन हमारे लिये (स्योनं) सुख देनेवाला (अस्तु) होवे। (बभ्रुं) भरण पोषण करनेवाली, (कृष्णां) कृषित होनेवाली, (रोहिणीं) जिसमें वृक्षादि बढते हैं ऐसी, (विश्व-रूपां) सब प्रकारकी (इन्द्रगुप्तां) वीरोंसे रक्षित (ध्रुवां) गति के कारण स्थिर और (पृथिवीं) विस्तृत (भूमिं) मातृभूमि का (अहं) मैं (अ-जीतः) अपराजित, (अहतः) न मारा जाकर, (अक्षतः) व्रणादि रोग से रहित होकर (अध्यष्टां) अधिष्ठाता-अध्यक्ष—होता हूं।

हमारी मातृभूमिके पर्वत, पहाड, वन और अरण्य तथा सब अन्य स्थान हमारे लिये सुखदायी हों। हमारी मातृभूमि अनेक प्रकारके धान्यादि की उत्पत्ति करनेके कारण हमारा उत्तम पोषण कर रही है। इस लिये मैं नीरोग, बलवान् और विजयी होकर यहां का अध्यक्ष और अधिष्ठाता होता हूं।

ता नः प्रजाः सं दुहृतां समग्रा
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्॥१६॥

(ताः) वे (समग्राः) सब (नः प्रजाः) हमारी प्रजायें (सं) मिलकर (दुहृतां) पूर्णता प्राप्त करें। हे (पृथिवि) मातृभूमि! (वाचो मधु) वाणी की मीठास (मह्यं) मुझको (धेहि) दे।

हे मातृभूमि! हमारे में से प्रत्येक के अन्दर वाणी की मधुरता रहे, इस मधुरतासे हम सब प्रजाजन संघशक्तिसे प्रभावशाली बन कर संपूर्ण रीतिसे पूर्णता संपादन करेंगे।

पाठ ११

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरं कृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जिन्वंति स्वधयान्नेन मर्त्याः ॥
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥

(भूम्यां) हमारी मातृभूमि में (देवेभ्यः) अग्न्यादि देवों के लिये (अरंकृतं) सुसंस्कृत किये हुए (हव्यं) हवनीय पदार्थों का (यज्ञं) यज्ञ (ददति) करते हैं। इसी (भूम्यां) भूमिपर (मर्त्याः मनुष्याः) मरण धर्म वाले मनुष्य (स्व-धया) अपनी धारणा शक्तिसे और अन्न से (जिन्वन्ति) जीवित रहते हैं। इस प्रकार की (सा) वह (नः पृथिवी भूमिः) हमारी विस्तृत मातृ-भूमि हमारे लिये (प्राणं) प्राण का बल, (आयुः) दीर्घ आयु (दधातु) देवे और (मा) मुझे (जरदष्टिं) वृद्ध अर्थात् अति दीर्घ आयुसे युक्त (कृणोतु) करे ॥

जिस भूमिमें देवों के प्रीत्यर्थ यज्ञयाग और इष्टियां करते हैं और जहां सब मनुष्य उत्तम अन्न का भोग करके अपनी निज धारणा शक्ति से उन्नत होते रहते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे लिये आयु आरोग्य और दीर्घ जीवन तथा बल देवे ।

शिला भूमि रश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।)
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

(शिला) शिला (अश्मा) पत्थर तथा (पांसुः) धूलिरूप यह (भूमिः) मातृभूमि है । (सा) उसका (सं-धृता) उत्तम रीतिसे धारण होने पर ही वह (धृता) सुसंरक्षित होती है । (तस्यै) उस (हिरण्य-वक्षसे) अपने अन्दर सुवर्ण धारण

करनेवाली (पृथिव्यै) मातृभूमि के लिये मैं (नमः) नमन (अकरं) करता हूं।

जिस में मिट्टी, पत्थर, शिला आदि हैं और सोना चांदी आदि खनिज पदार्थ भी विपुल हैं वह हमारी मातृभूमि है। इसका प्रथम मंत्रोक्त आठ गुणों से उत्तम प्रकार धारण होने से ही इसकी स्वतंत्रताकी रक्षा होती है। इस लिये इस प्रकारकी वंदनीय मातृभूमि के लिये मेरा प्रणाम है।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥

(यस्यां) जिसमें (वानस्पत्याः वृक्षाः) वनस्पतियां और वृक्ष (विश्वहा) सदा (ध्रुवाः) स्थिर (तिष्ठन्ति) रहते हैं। उस (विश्व-धायसं) सब को धारण करनेवाली और जिसका हमने (धृतां) धारण किया है ऐसी (पृथिवीं) मातृभूमिका (अच्छ आवदामसि) हम स्वागत करते हैं।

जिस हमारी मातृभूमि में वृक्ष, वनस्पतियां और विविध औषधियां सदा फूलतीं और फलतीं हैं, जो हम सब का धारण कर रही है और हम सब (प्रथम मंत्रोक्त आठ गुणोंके द्वारा) जिसका धारण कर रहे हैं, अर्थात् जिसकी स्वतंत्रता की रक्षा कर रहे हैं, उस वंदनीय मातृभूमि का हम सब स्वागत करते हैं ॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥

(उदीराणाः) उठते हुए, (उत आसीनाः) और बैठे हुए, (तिष्ठन्तः) खडे होते हुए, तथा (प्रक्रामन्तः) चलते फिरते और दौडते हुए (दक्षिण-सव्याभ्यां) सीधे और बांएं (पद्भ्यां) पांवों से (भूम्यां) भूमि में (मा व्यथिष्महि) न कष्ट उत्पन्न करें।

हमारी हरएक प्रकारकी हलचल कष्ट उत्पन्न करनेवाली नहो।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९॥

(वि—मृग्वरीं) विशेष खोज करने के योग्य, (ब्रह्मणा) ज्ञानसे जिसकी (वावृधानां) वृद्धि होती है, (ऊर्जं) बलकारक (पुष्टं) पुष्टिकारक (घृतं अन्नभागं) घी और अन्न आदि भोग्य पदार्थ (बिभ्रतीं) धारण करनेवाली, (क्षमां) निवास करने योग्य (पथिवीं) विस्तृत (भूमिं) मातृभूमि की मैं (आ वदामि) प्रार्थना करता हूं कि हे (भूमे) मातृभूमि! (त्वा) तुझपर (अभि नि षीदेम) हम सब बैठें ।

हमारी भूमि अत्यंत उत्तम है, इस लिये उसकी अनेक प्रकार से खोज होनी चाहिये । खोज करके उसका अधिकाधिक उपयोग करके अन्नपेयादि भोग्य पदार्थ विशेष प्रकारसे प्राप्त करके हम अपना बल, पुष्टि, शक्ति और अन्य प्रकारका तेज बढायेंगे । और अधिक विस्तृत प्रदेश प्राप्त करके आनंदसे बढेंगे ॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं निदध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥३०॥

हे (पृथिवि) मातृभूमि ! (शुद्धाः आपः) शुद्ध निर्मल जल (नः तन्वे) हमारे शरीर के लिये (क्षरन्तु) बहता रहे । (यः) जो (नः सेदुः) हमारा नाश करनेका यत्न करेगा (तं) उस दुष्टको हम (अ--प्रिये) अप्रियता में (नि--दध्मः) रखेंगे । मैं (मां) अपने आप को (पवित्रेण) पवित्रता से (उत् पुनामि) उत्तम पवित्रता करता हूं ॥

हमें सदा शुद्ध जल प्राप्त होता रहे और जल आदिसे हमारे शरीर पवित्र होते रहें । हम शुद्ध, सरल और श्रेष्ठ आचार और विचारों से अपने आपको सदा पवित्र बनायेंगे । और जो शत्रु हमारा नाश करने का यत्न करेगा उसको हम योग्य दण्ड देंगे ॥